हिन्दू देवकुलों के बारे मेरा ज्ञान और इंडोलॉजिस्ट्स का श्रम

अयोध्या में २२ जनवरी के शुभ दिन रामलला की प्राण प्रतिष्ठा की घटना ने मुझे यह सोचने को मजबूर किया कि हिन्दुओं के देव-देवियों के बारे में ९९ प्रतिशत तक मैं कुछ ख़ास नहीं जानता. अन्य सामान्य लोग अपनी जांच इस बारे खुद कर लें. इसका बड़ा कारण संभवतः संस्कृत भाषा के पठन-पाठन के बारे में मेरी कमजोरी है. मैंने संस्कृत भाषा और ग्रामर सिर्फ ग्यारहवीं जमात तक पढ़ी है और ठेठ या उच्च स्तर की वैसी संस्कृत बांचने और पाठ का अर्थ समझने में अक्षम हूं जैसी ऋग्वेद में है. एक भी ऋचा का अर्थ नहीं कर पाता, यूं अपने मन में यह ख्याल जरूर रखता हूं कि शायद समझ गया हूं. शहर में स्थित महर्षि दयानंद विश्व विद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यापकों से पूछा तो वे भी आनाकानी कर गए! एक महिला एसोसिएट प्रोफेसर ने तो कहा कि उसने अध्ययन नहीं किया है, इसलिए बांचने और अर्थ समझाने में असमर्थ है. हम जिस तरह के एजुकेशन सिस्टम से दीक्षा पाकर निकलते हैं उसमें भारतीय भाषाओं में हमारे सांस्कृतिक महत्त्व के टेक्स्ट्स और स्मृतियों के पठन-पाठन की कोई सामान्य-सी योजना भी नहीं है. विभाग विशेष अर्थात, संस्कृत महाविद्यालयों और सामान्य विश्व-विद्यालयों के, संस्कृत विभागों के आम सिलेबस से मैं अधिक वाकिफ नहीं बस इम्प्रैशन भर है कि शायद इनमें एम.ए. पाठ्यक्रम में ये सब नार्मन तरीके से पढ़ाये जाते हैं.

हिन्दू देवकुलों का अध्ययन एक ख़ास किस्म का तजुर्बा है और जिससे आधार पर हम अपने अराध्यों और मार्गदर्शकों के निजी जीवन के कुछ पक्ष और बौद्धिक कृतियों के बारे में और इन द्वारा बताये गए जीवन दर्शन के गहन पहलुओं और अपने हिन्दू समाज की दिनचर्या ही नहीं जीवन के गहराइयों को शायद समझ पायें. हम अपने आसपास या दूरस्थ देवस्थलों और देवालयों में हिन्दू देव, देवियों को चित्र, चित्रार्द्ध और चित्रभाषा में अनेक रूप में देखने के अभयस्त हैं लेकिन शायद ही हिन्दू देवकुलों के विस्तार और इनकी श्रेणियों से परिचय पाने की जिज्ञासा रखते हैं. बस, सुनने से जो नाम मन पर चढ़ गए वे ही याद हैं. हिन्दुओं के अलावा ग्रीक और रोमन देव-देवियों की भी लम्बी फेहरिस्त है और हम यदा-कदा इनके नामों से भी प्रसंगवश परिचित होते रहे हैं जैसे कि अपोलो, जुपिटर, मार्स, मरकरी पुरुष देव हैं और वेस्ता, जूनो, मिनर्वा, देवियां हैं. भारत में देवकुलों की सूची में ५०० नाम तो हैं ही.

प्रत्येक देव-देवी के लिए पूजा, अर्चना के विधान और देवस्थान तय हैं. मुझे यह जानकर आश्चर्य होता है कि भारतीय धर्म-संस्कृति के ग्रंथाचार्यों ने कितनी मेहनत से यह सब किया होगा और इसका प्रयोजन क्या रहा होगा जिससे मैं तो अधिकांश अपरिचित ही हूँ ! भारत में एक बिलकुल ही निराले धर्म-दर्शन की सुदीर्घ परंपरा विकसित रही है जिसमें विस्तार हुआ और वैष्णवों, शैव, शाक्त और जैनियों के अलावा अनेक और समुदायों की उत्पत्ति हुयी. इनका निकास आदि-शिव साधकों और वैष्णवों ने किया जैसे कि निम्बार्काचार्य, माधवाचार्य, दादू, श्री वल्लभ, चरनदास, चैतन्य, स्वामीनारायण, रामनुज और पंथ संस्थापकों जैसे कि गुरुनानक, रामदेव ने. ७० से अधिक हिन्दू धार्मिक सम्प्रदायों और अनेक पंथों ने एक प्रमुख गुरु और संत को अपनाया. इनके बारे में विस्तृत सूची और ब्यौरा ई. सन १८९६ में जोगेंद्रनाथ भट्टाचार्य ने 'हिन्दू कास्ट्स एंड सेक्ट्स' पुस्तक में दिया है. इससे पहले प्रोफेसर वी.पी. जोहरापुरकर ने सन १९५८ में प्रकाशित पुस्तक में भट्टारक जैन समुदाय के बारे विस्तार से लिखा है. इनसे भी पहले होरेस हेमन ने १८६१ में 'ए स्केच ऑफ़ द रिलीजियस सेक्ट्स ऑफ़ द हिन्दूज' में ५० से अधिक धार्मिक सम्प्रदायों के बारे में जानकारी दी थी. श्री हनुमान के भक्तों की अधिसंख्या जाट समुदाय में है लेकिन यह न तो पंथ है, न ही मत. बल्कि एक चरित्र मान्यता है. मंदिरों की अनेक श्रेणियों को देखकर देवकुलों की समाज पर विशालता और असर का आभास होता है. इसकी पैठ गहरी है. देवप्रासादों में एक देव-देवी या देवकुल को एक निश्चित और विशिष्ट स्थान (स्थल नहीं) क्यों दिया गया इसके बारे में जानने

को शायद ही कभी हम उत्सुक हुए दीखते हैं; बस जो चल रहा है उसे स्वीकार करते हैं, जीवन भर देखते चले जाते हैं और दर्शन के बाद मंदिर परिसर से बाहर हो लेते हैं. बाद में सामान्य तरीके से जीवन यापन में लग जाते हैं. देव-देवियों की प्रतिमाओं के शिल्प के बारे में, उनके कक्ष और श्रृंगार और निर्धारित अर्चना शैली के अलावा शिल्पियों की विद्या और प्रतिमा-मान एवं बहुत सी तकनीकी बातों की खोज नहीं करते जबकि भारतीय विद्यावृत्त में इनके बारे में विस्तार से जानकारी मौजूद है. मैं भी नहीं पढ़ पाया हूं इसलिए किसी तरह की डींग हांकने की जुर्रत नहीं कर रहा हूं. यह जानकर मुझे भी आश्चर्य होता है कि भारत अध्येताओं में अंग्रेज़ स्कॉलर्स ने -चाहे किसी भी प्रयोजन और नीयत से, भारतीय हिन्दू देवकुलों का अध्ययन करके सन १८१० में ही किताब लिख दी थी. जैसाकि ब्रिटिश सोल्जर और बाद में भारत अध्येता बने एडवर्ड मूर ने लिखी और प्रकाशित की थी. एडवर्ड मूर, भारत में आर्मी ऑफ़ द ईस्ट इंडिया कंपनी में ई. सन १७८२ में एक कैडेट अफसर के रूप में भर्ती हुए थे और ई. सन १७९६ में कैप्टेन थे. भारत में रहते हुए इन्हें सन १८०६ में रॉयल सोसाइटी ऑफ़ इंग्लैंड का फेलो बनाया गया. मूर ने सन १८१० में 'द हिन्दू पेन्थियन' के अलावा १८११ में 'हिन्दू इन्फंटिसाईड' अर्थात बालहत्या और, सन १८३४ में 'ओरिएण्टल फ्रैगमेन्ट्स' किताबें भी लिखी हैं. वे सन १८४८ में सिधार गए. इसके अलावा भी इंडोलॉजिस्ट्स ने बहुत कुछ और लिखा है जैसे कि कई खण्डों में ‘द सेक्रेड बुक्स ऑफ़ द हिंदूज़’ और ‘रिलीजियस हिस्ट्री ऑफ़ द ओरिएंट’, आदि. परन्तु जैसा कि मुझे श्रीयुत दामोदर धर्मानंद कोसाम्बी (डी.डी.के.) की ‘कंबाइंड मेथड्स इन इंडोलॉजी’ के कुछ अध्याय पढ़कर महसूस हुआ कि विशेषी मूल के भारत अध्याताओं ने बेशक बहुत मेहनत की और इन प्रकाशनों के अध्ययन के साथ प्रस्तुत सन्दर्भ विशाल संख्या में दिए हैं, लेकिन इनमें से कुछ अध्ययनों में अपनाये गए मेथड और निष्कर्षों को आँख मूँद कर स्वीकार भी नहीं करना चाहिए. उदाहरण के लिए कोसाम्बी ने अपनी उक्त पुस्तक के ‘डेवलपमेंट ऑफ़ द गोत्र सिस्टम्स’ अध्याय में बताया है कैंब्रिज यूनिवर्सिटी के जॉन ब्रौ की पुस्तक ‘द अर्ली ब्राह्मनिकल सिस्टम ऑफ़ गोत्र एंड प्रवर –‘अ ट्रांसलेशन ऑफ़ द गोत्रप्रवर मंज़री’ में लिखित जानकारी के इंटरप्रिटेशन की बाबत सही टिप्पणी नहीं की है. गोत्र प्रवर मंजरी के लेखक पुरुषोत्तम पंडित हैं. कोसाम्बी ने हमें सावधान किया है और कहा कि अगर मूल पाठ नहीं देखा और इसकी पूर्ण समझ नहीं तो किसी किस्म की ऐसी टिपण्णी जिससे भारतीय समाज और इसके ज्ञानाधार के क्रमिक विकास के बारे में कुछ कहना है तो संयम से कहें. अर्थ यह कि विदेशी इंडोलॉजिस्ट्स में शायद वह समझ कभी विकसित नहीं हुयी जिसकी पृष्ठ भूमि को ठेठ भारतीय ज्ञान पद्धति से ही समझा जा सकता है. इंटरप्रिटेशन में सिर्फ सूचना का ही महत्व नहीं बल्कि भारतीय दर्शन की उत्पत्ति, कबीलों की उत्पत्ति और नामकरण, जियोग्राफी, नर-नारी के स्थायी निवास और प्रवर की उत्पत्ति के अलावा भाषा और संवाद, ग्रामर का विकास और भारत की अंतर्सामाजिक गतिकी के अलावा वर्णक्रम और इसकी अनेक मर्यादाओं को समझना होता है, ऐसा कोसाम्बी का सावधान करने वाला संकेत है.

वेद, उपनिषद, पुराण और बहुत सी अन्य हिन्दू धर्म और दर्शन की भारतीय मनीषियों द्वारा लिखित प्राचीन किताबें इन्होंनें पढ़ी होंगी, भारतीय देवकुल सिस्टम को समझा होगा और फिर सूची बनाकर सबके विवरण जमा किये होंगें, भारतीय पंडितों से समझा होगा और भारतीय हिन्दू समाज में इनकी व्यापकता को जाना होगा. जाहिर है एक अंग्रेज के लिए इन्हें समझना कितना श्रमसाध्य और समग्र प्रयास रहा होगा!

मुझे अब महसूस हो रहा है कि पढ़ाई चाहे कैसी भी हो, भारत के मूल निवासी होने के नाते हिन्दू देवकुलों के बारे में कॉलेज स्तर पर ही हमें जानकारी दी जानी चाहिए थी. अपने देश की विद्या और संस्कृति को हम जानते ही कितना हैं? यह जानकारी हमें टूरिस्ट लिटरेचर या कोर्स की किताबों से मिलने से रही. जाहिर है, ऐसे में बनावटी तौर से ही यह कहलवाना कि ‘हमें भारतीय होने पर गर्व है’ मुझे जंचता नहीं, जैसा कि धार्मिक शोर-शराबा करने वाले या राजनैतिक-हिंदुत्व के पक्षधर, सामान्य भीड़ वाले झंडाबरदार ऐसा कहने के लिए हिन्दुओं को प्रेरित करके जोर से उद्घोष करने को कहते रहे हैं. यह सब खुद को भ्रम में रखने जैसा निवारण प्रतीत होता

है. तटस्थ भाव से उन लोगों की हमें प्रशंसा करनी चाहिए जिहोंनें अपनी भाषाओं अर्थात इंग्लिश, जर्मन, फ्रेंच, जापानी या मंडारिन में भारत को समझ कर किताबें लिखीं. मुझे यह भी महसूस होता कि हम स्वाध्याय के मामले में बहुत ढीले हैं. जीवन के पहले ६०-६५ वर्षों में सांसारिक व्यस्तताओं से निपट कर अंतिम अश्रमवावस्था के दौर में तो स्वाध्याय करके भारत को हम समझ ही सकते हैं अन्यथा टूरिस्ट बनकर मंदिरों के यूं ही ख्वामखाह चक्कर काटने से कुछ अधिक हासिल होने वाला नहीं है. इस समझ को भ्रमण से बढ़ाया जा सकता है. अंतिम दिनों में शांत होने के लिए इसे मैं अब जरूरी समझ रहा हूं.